International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(2): 269-272

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(2): 269-272
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-01-2022
Accepted: 18-02-2022

डॉ. हेमन्त शर्मा
सहायक प्राध्यापक संस्कृत साहित्य
शासकीय संस्कृत महाविद्यालय,
रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

Corresponding Author:
डॉ. हेमन्त शर्मा
सहायक प्राध्यापक संस्कृत साहित्य
शासकीय संस्कृत महाविद्यालय,
रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

शीर्षकपृष्ठम् भारतीयदर्शन और मानवमूल्य

डॉ. हेमन्त शर्मा

शोधसार

भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही दर्शन एवं मानवमूल्यों की अनुगामी संस्कृति रही है । धर्मार्थकाममोक्ष की प्राप्ति में दर्शन एव मानवमूल्य दोनों की अपनी-अपनी भूमिका रही है । जहाँ दार्शनिक विचारधारा में त्रिविध दुःखों का नाश और तत्त्व की प्राप्ति मानवजीवन का परम ध्येय माना गया है । वहीं मानवीय मूल्य भी इसी दिशा में अग्रसर दिखाई देते हैं । तात्त्विकरूप से देखें तो दर्शन एवं मानवमूल्य दोनों ही प्राणीमात्र के कल्याण से समन्वित हैं, दोनों समाज के व्यावहारिक सन्तुलन एवं विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । किन्तु दर्शन व्यवहारिक सिन्द्धान्तों के साथ-साथ आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों की भी विवेचना करता है । विभिन्न मानवीय मूल्यों को भी दार्शनिक विचारधारा में देखा जा सकता है । मानवीयमूल्य मानव को महान बनाने में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं । दर्शन में मानवमूल्य एवं मानवमूल्यों में दर्शन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं । व्यावहारिक रूप से भी दोनों एक दूसरे में समाहित दिखाई देते हैं । भारतीय शास्त्रों में एक साथ दर्शन एवं मानवमूल्यों का उदात्त स्वरूप हमारे ऋषियों ने प्रस्तुत किया है । प्रस्तुत लेख में भारतीय दर्शन एवं मानवमूल्य के उसी स्वरूप को वर्णित करने का प्रयास किया गया है ।

कुञ्चीशब्दाः- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, दर्शन, संस्कृति, आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक, अस्तेय, अपरिग्रह, शम, दम, इन्द्रियनिग्रह, अपवर्ग, यम, प्राणायाम, धारणा, प्रत्याहार, समाधि, तत्त्व

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में दर्शन उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्त्व का बोध हो । इस प्रकार दर्शन का सामान्य अर्थ हुआ तत्त्व का ज्ञान या तत्त्व का दर्शन । मानव के विभिन्न दुःखों की निवृत्ति के लिये और परमतत्त्व के ज्ञान के लिये ही दर्शन का उद्भव हुआ । आचार्य रामजी उपाध्याय के शब्दों में- प्राचीन भारत की सर्वोच्च प्रतिभा का उपयोग दार्शनिक अनुशीलन में हुआ । भारतीय दर्शन संक्षेप में जगत् के आध्यात्मिक पक्ष का ज्ञान है ।

इस ज्ञान की प्राप्ति की प्रक्रिया को भी दर्शन कहते हैं। दर्शन के प्रकाश में मानव ने अपने जीवन के उद्देश्य और कर्त्तव्य-पथ का निर्धारण किया है। [1]

सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक धरातल पर मानवमूल्यों में भारतीय दर्शन की झाँकी स्पष्ट दिखाई देती है। या यों कहें भारतीयदर्शन में मानवमूल्यों की छटा स्पष्ट दिखाई देती है। भारतीयदर्शन में मानवमूल्य और मानवमूल्य में भारतीयदर्शन परस्पर समाहित है। दर्शन अर्थात् देखना, अब अच्छा देखना या बुरा देखना दोनों ही दर्शन है। मानवमूल्य अर्थात् मानव के मूल्य अर्थात् कीमत या वैल्यू को बताने वाले कारक। या मानव के स्वभाव-व्यक्तित्व को निर्धारित करने वाले कारक। सामान्य रूप से इन्हें भी दर्शन की भाँति अच्छा व बुरा दो कारकों में बाँटा जा सकता है। दया, दान, परोपकार, क्षमा, दम, शम, अस्तेय, अपरिग्रह, अंहिसा, सत्य, शुचिता, इन्द्रियनिग्रह, अक्रोध, समता, सद्भाव आदि अच्छे एवं श्रेष्ठ मानवीय मूल्य माने जाते हैं इसके विपरीत क्रोध, पापाचरण, लोलुपता, मोह, हिंसकप्रवृत्ति, चोरी, उन्माद, अंहकार, स्वेच्छाचारिता आदि बुरे एवं त्याज्य मानवीय अवगुण माने गये हैं। यदि किसी व्यक्ति में उत्तम मानवीय मूल्य दिखाई देते हैं तो उसे हम महापुरुष या उत्तम पुरुष कह देते हैं और जब उसमें दुर्गुण दिखाई देते हैं तो उसे दुष्ट या अधम व्यक्ति कहते हैं अर्थात् देखने के आधार पर ही हम उसके स्वभाव का, महानता या अधमता का निर्धारण करते हैं। वस्तुतः समाज के समरसता पूर्ण संचालन के लिये, सामाजिक सौहार्द के लिये, प्राकृतिक सन्तुलन के लिये, प्राणिमात्र कल्याण के लिये एवं विश्वमंगल के लिये उच्च मानवीय मूल्य किसी भी सभ्य समाज एवं प्रगतिशील राष्ट्र के लिये परम आवश्यक हैं। वेद के निम्न मन्त्र में दर्शन एवं मानव मूल्य की तादात्म्यता स्पष्ट दिख रही है –

ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत्।
तेनत्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥ [2]

उपर्युक्त मन्त्र ब्रह्म की व्यापकता रूपी दार्शनिक सिद्धान्त के साथ-साथ हम दूसरे का ध्यान रखते हुये त्याग के साथ उपभोग करें, किसी के धन को न लें इत्यादि मानवमूल्य को भी समाहित किये हुये है। इससे स्पष्ट होता है, कि भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही मानवीय मूल्यों को प्रमुख स्थान दिया गया है। दार्शनिक सिद्धान्त कहता है कि सर्वं खल्विदं ब्रह्म [3] अर्थात् सारे जगत् में ईश्वर व्याप्त है। गोस्वामी तुलसीदास भी इसी को केन्द्र में रखकर कहते हैं – सियाराममय सबु जग जानी। करहुँ प्रणाम जोर जुग पाणी॥ [4] तुलसीदास की इस चौपाई में उच्च मानवीय मूल्य एवं उनकी उदात्त भावना को देखा जा सकता है।

भारतीयदर्शन एवं मानवमूल्य दोनों का मूल तादात्म्य पुरुषार्थ चतुष्ट्य प्राप्ति में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। भारतीय संस्कृति में सामाजिक संरचना में चार मूल तत्त्व प्रमुख रूप से माने गये हैं धर्म अर्थ काम और मोक्ष। धर्म अर्थ एवं काम की परिणति मोक्ष में ही स्वीकार की गयी है और भारतीय दर्शनों का मूल उद्देश्य भी मोक्ष प्राप्ति ही है। भारतीय संस्कृति में यदि व्यक्ति धर्म करता है, धर्मपूर्वक अर्थोपार्जन करता है एवं धर्मसुसंगत काम करता है तो उसकी परिणति मोक्ष में ही होती है। श्रीमद्भागवत महापुराण में कहा गया है कि मानव को केवल इन्द्रिय सुखों के पीछे नहीं भागना चाहिये, कामनाओं की तृप्ति केवल जीव का उद्देश्य नहीं है अपितु आत्मसन्तुष्टि के साथ मन को तत्त्वज्ञान के प्रति और सत्य के अनुसन्धान में लगा देना चाहिये-

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत् यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥ [5]

वस्तुतः दर्शन का उदय कैसे हुआ होगा यह विचारणीय है। इस विषय में सभी के अपने अपने विचार हो सकते हैं किन्तु संसार के प्राणियों को विभिन्न दुःखों से दुःखी देखकर अवश्य ही तत्त्ववेत्ताओं ने मन में उनसे निवृत्ति का विचार किया होगा। सांख्यदर्शन की टीका सांख्य कारिका में आधिभौतिक-आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तीन प्रकार के दुःखों से निवृत्ति एवं आनन्द या मोक्ष की प्राप्ति को दर्शन का मूल स्वीकार किया-

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्॥ [6]

चार्वाक को छोडकर सभी आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों ने दुःख निवृत्ति एवं मोक्ष, निर्वाण या कैवल्य की प्राप्ति को

[1] प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका (आचार्य रामजी उपाध्याय)- पृष्ठ 337
[2] ईशावास्योपनिषद्- 1.1
[3] छान्दोग्योपनिषद्- 3.14.1
[4] रामचरितमानस- बालकाण्ड दोहा 7(घ) उपरान्त
[5] श्रीमद्भागवत- 1.2.9-10
[6] सांख्यकारिका- 1.1

एकमत से स्वीकार किया है। निःश्रेयश की प्राप्ति ही दर्शनों का मूल रहा है। इसकी प्राप्ति के लिये भारतीय मनीषियों ने पुरुषार्थ चतुष्ट्य को सोपानिक क्रम में प्रस्तुत किया। जिनमें मानवीय मूल्यों के साथ इस मुक्तिपथ पर अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त किया गया।

सांख्य-योग-वेदान्त-जैन-बौद्धादि सभी दार्शनिक सिद्धान्तों में मानवीय मूल्यों का समाहार दिखाई देता है। मनुस्मृतिकार मनु ने मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में धर्म के दश लक्षण बतलाये –

धृतिक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[7]

धैर्य धारण करना, क्षमा कर देना, इन्द्रियों को वश में रखना, मन को नियन्त्रण में रखना, चोरी नहीं करना, आवश्यकता से अधिक संग्रह नहीं करना, क्रिया में शुचिता रखना, विद्यावान् होना, सत्य का भाषण करना, अनावश्यक क्रोध नहीं करना ये धर्म के दश लक्षण होते हैं। वस्तुतः ये धर्म के लक्षण के साथ-साथ उच्चमानवीय मूल्य भी हैं। वेदान्त दर्शन में मानवमात्र के कल्याण के लिये काम्यादिकर्म और शमादिषटक् सम्पत्ति बताये गये हैं। वेदान्तप्रतिपादित इन सभी कर्मों में मानवीयमूल्यों को स्पष्टतया देखा जा सकता है। शमादिषटक् के सम्बन्ध में वहाँ कहा गया है- श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यो मनसो निग्रहः शमः। दमो बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम्। निवर्तितानामेतेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्य उपरणमुपरतिरथवा विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः। तितीक्षा शीतोष्णादि-द्वन्द्व-सहिष्णुता। निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तदनुगुणविषये च समाधिः समाधानम्। गुरुपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा। मुमुक्षुत्वं मोक्षः।[8] वेदान्त वर्णित इन सभी का यदि मनुष्य पालन करेगा तो निश्चित ही समाज में उच्चमानवीय मूल्यों का विकास होगा। मीमांसादर्शन का तो प्रारम्भ ही 'धर्म की जिज्ञासा से होता है'[9]। वास्तव में किसी भी समाज की सामाजिक संरचना का आधार धर्म ही होता है। भारतीय चिन्तकों ने शायद इसीलिये धर्म को प्रथम पुरुषार्थ माना। वेदादि सहित समस्तदर्शनों की सार श्रीमद्भगवद्गीता का प्रारम्भ ही धर्म से होता है। भारतीय संस्कृति में मानवीय मूल्यों में धर्म को ही प्रमुख माना गया है और जितने भी मानवीय मूल्य हैं यदि वे धर्मसम्मत हैं तभी समाज के लिये कल्याणकारी एवं ग्राह्य हैं। वस्तुतः जितने भी मानवीय मूल्य हैं उनका मूल धर्म ही है। श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम श्लोक में कहा गया है धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे ....।[10] यदि इसे हम ऐसे पढ़े ''क्षेत्रे-क्षेत्रे धर्मं कुरु'' तब इसका अर्थ होगा हर कार्य में हर क्रिया में धर्म का पालन करें अर्थात् गीता के इस एक वाक्य से ही समस्त विश्व का कल्याण हो जायेगा। संसार की समस्त अमानवीय घटनायें व अकृत्य स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे। गीता दर्शन को यदि हम देखें तो पता चलता है उसका सारा केन्द्रबिन्दु धर्म ही है, देखिये गीता का प्रारम्भ 'धर्मक्षेत्रे' से होता है और अन्त मतिर्मम' से, अर्थात् धर्मक्षेत्र में मेरी मति होवे। धर्मक्षेत्र में जब मनुष्य की मति हो जायेगी तब अन्य मानवीयमूल्यों की प्राप्ति तो स्वतः ही हो जायेगी क्योंकि सभी धर्म के ही अंग हैं। गीता कहती है, कि अपने-अपने धर्मानुसार कर्त्तव्यों का पालन करके ही मनुष्य एवं समाज सिद्धि को प्राप्त करता है- स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।[11] भारतीय संस्कृति में धर्म को अंग्रेजी के रिलीजन के समान सीमित अर्थ में स्वीकार नहीं किया गया है अपितु यहाँ तो जन्म से न केवल मृत्यु पर्यन्त अपितु उसके बाद भी धर्म की सत्ता स्वीकार की गई है, यहाँ मानव की प्रत्येक क्रिया उसका प्रत्येक कर्म, सभी मानवीयमूल्य, सारा चिन्तन व दर्शन धर्म से जुड़ा हुआ है। धर्म की इसी व्यापकता को वेदव्यास ने महाभारत के शान्तिपर्व में कहा है-

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।[12]

योग दर्शन में कहा गया है- योगः चित्तवृत्तिनिरोधः।[13] अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है। चित्तवृत्तियों का निरोध कैसे होगा इसके लिये पतञ्जलि ने आठ उपागम बतलाये जिन्हें अष्टांग योग कहते हैं- यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि।[14] इन्हीं अष्टांग योगों में पतञ्जलि ने मानवमूल्यों के लिये आवश्यक तत्त्वों या विभिन्न मानवीयमूल्यों का विवेचन भी किया है। पातञ्जल योगसूत्र सहित जैन-बौद्ध दर्शन में जिन दार्शनिक तत्त्वों को स्वीकार किया गया है वस्तुतः वे केवल दार्शनिक तत्त्व ही नहीं अपितु उच्च मानवीय मूल्य भी हैं

[7] मनुस्मृति- 6.92
[8] वेदान्तसार- पृ. 10
[9] जैमिनीयसूत्रम्- 1.1.1 अथातो धर्मजिज्ञासा
[10] श्रीमद्भगवद्गीता- 1.1
[11] श्रीमद्भगवद्गीता- 18.45
[12] महाभारत शान्तिपर्व- 109.11
[13] पातञ्जलयोगसूत्रम्- समाधिपाद 1.2
[14] पातञ्जलयोगसूत्रम्- 2.29

और उन सभी सत्य, अंहिसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, तप, शौच, सन्तोष, स्वाध्याय, आदि मानवीय मूल्यों का विवेचन सभी दर्शनों में प्राप्त होता है । मानव जीवन का चरम लक्ष्य है तत्त्व का ज्ञान या मोक्ष की प्राप्ति और इसे प्राप्त करने के लिये वह विभिन्न प्रयास करता है, किन्तु विना मानवीय मूल्यों के अनुपालन के उसको इस लक्ष्य की प्राप्ति दुष्प्राप्य दिखाई देती है । इस सम्बन्ध में मनु का कथन है, कि सम्यक् दर्शन होने पर कर्म मनुष्य को बन्धन में नहीं डाल सकता एवं जिनके पास सम्यक् दृष्टि नहीं है वे ही कर्म के बन्धन में और संसार के मायाजाल में फंसते हैं और कायिक, वाचिक व मानसिक शुभाशुभ कर्मों के द्वारा ही मनुष्यों की त्रिविध गति होती है-

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः।। [15]

विश्व का कोई भी दर्शन क्यों न हो सभी ने कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया है । सभी दार्शनिक सिद्धान्त सत्कर्म की ही प्रेरणा देते हैं और इन सत्कर्मों में मानवीय मूल्य समाहित रहते ही हैं । मानवीय कर्म अथवा क्रियायें शुभाशुभ कर्मों की ही द्योतक होती हैं किन्तु भारतीय सनातन दर्शन हमेशा से ही सत्कर्म की, विश्वबन्धुत्व की प्रेरणा देते आये हैं । वस्तुतः जब व्यक्ति किसी दार्शनिक सिद्धान्त को उसके विचार को अपनाता है तो स्वतः ही वह मानवमूल्यों की ओर अग्रसर होता जाता है । भारतीय ऋषियों ने जिस उदात्त भावना से मानवीयमूल्यों एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन किया यदि संसार इसमें से थोड़ा भी अपनालेगा तो सांसारिक जन समस्त समस्याओं, आधिभौतिकादि सभी दुःखों से निवृत्त हो सकते हैं ।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. उपाध्याय, आचार्यरामजी: प्राचीनभारतीयसाहित्य की सांस्कृतिक भूमिका; इलाहाबाद: लोकभारतीप्रकाशनदेवभारतीप्रकाशन, मार्च 1966
2. शास्त्री, हरगोविन्द: मनुस्मृति; वाराणसी: चौखम्बासंस्कृतभवन, वि.सं. 2066
3. ईशादिनौउपनिषद; गोरखपुर: गीताप्रेस, 2001
4. गोस्वामी, तुलसीदास: रामचरितमानस; गोरखपुर: गीताप्रेस, 2005
5. वेदव्यास: श्रीमद्भागवतमहापुराण; गोरखपुर: गीताप्रेस, 2010
6. ईश्वरकृष्ण: सांख्यकारिका; वाराणसी: चौखम्बाप्रकाशन, 1995
7. सदानन्द: वेदान्तसार; वाराणसी: चौखम्बाविद्याभवन, 2000
8. जैमिनि: जैमिनीयसूत्रम्; वाराणसी: चौखम्बासुरभारतीप्रकाशन, 1980
9. वेदव्यास: श्रीमद्भगवद्गीता; गोरखपुर: गीताप्रेस, 2015
10. वेदव्यास: महाभारत; गोरखपुर: गीताप्रेस 1990
11. पतञ्जलि: पातञ्जलयोगसूत्रम्; वाराणसी: चौखम्बाप्रकाशन, 1980

[15] मनुस्मृति- 12.3